काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक

महामना पंडित मदन मोहन मालवीय

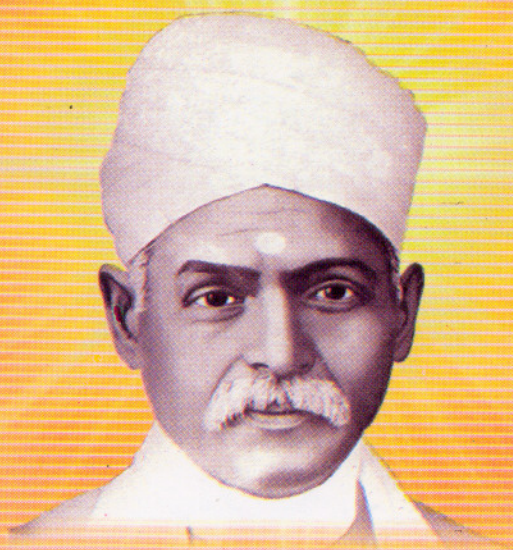

सम्पादक
डा० विश्वनाथ पाण्डेय

प्रकाशन कक्ष
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी
2006

मालवीयजी बार-बार कहते थे कि मनु के अनुसार-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।।

"धैर्य, क्षमा, बुरी वृत्तियों का दमन करना, चोरी न करना, शौच, आत्मनिग्रह, विवेक, विद्या, सत्य, क्रोध न करना - ये धर्म के दश लक्षण हैं।'

तप की व्याख्या करते हुए मालवीयजी लिखते हैं- "तप अपने उद्देश्य, प्रयोजन या गरज से अच्छा या बुरा, ऊँचा या नीचा, तामसिक, राजसी और सात्त्विक एवं कायिक, वाचिक और मानसिक कहलाता है।" जो काम निष्काम भाव से, फल की इच्छा त्याग कर, शम-दम से सम्पन्न हो कर, श्रद्धा और धैर्य के साथ मन वाणी या शरीर से किया जाता है, वह 'सात्त्विक तप' कहलाता है। मन को जीतना अर्थात काम-क्रोध लोभ-मोह से बचना और शुद्ध संकल्प-युक्त रहना किसी विषय-वृत्ति के कारण विक्षिप्त होकर फिर भी उस पर विजय प्राप्त करना, व्यवहार काल में छल-कपट, धोखा और फरेब से मन को दूर रखना, मन को सात्त्विक बनाना-यह 'मन द्वारा सात्विक तप' करना है। वाणी का सात्त्विक तप यह है कि जो वाक्य असत्य, दुःखदायी, अप्रिय और खोटा हो उसको किसी समय किसी भी अवस्था में मुंह से न निकालना; बल्कि प्रिय, सत्य, मीठे और मधुर वचन बोलना- यह वाणी द्वारा सात्त्विक तप करना है। शरीर से अर्थात् शरीर के अवयवों से, हस्तपादादि कर्मेन्द्रियों के द्वारा दूसरों की सहायता और सेवा करना, गिरे हुओ को उठाना, देश और जाति के लिए, अपने शरीर के दुःख और कष्ट की परवाह न कर, बल्कि यदि आवश्यकता हो तो धर्म और परोपकारार्थ प्राण अर्पण कर देना- यह 'काया का सात्त्विक तप' है। परन्तु अपनी स्तुति, मान, पूजा, सत्यकार, प्रतिष्ठा और नाम या भोग-विलास के लिए इन्हीं सब कामों को मन, वाणी या शरीर द्वारा करना इनको 'राजसी' बना देता है। जो तप अविवेक से, दूसरों को हानि पहुंचाने, दिल दुःखाने, द्वेष और शत्रुता से किया जाता है- वह 'तामसी' है"।[1]

(अभ्युदय, 15 जनवरी 1909)

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय

सम्पादक
डॉ. विश्वनाथ पाण्डेय

प्रकाशन कक्ष
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

प्रकाशक
विशेषकार्याधिकारी (प्रकाशन)
प्रकाशन कक्ष
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी-221005
दूरभाष : 230-7216, 230-7260

साभार : प्रो.वी.के. कुमरा, छात्र अधिष्ठाता, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, जिनके सहयोग से यह पुस्तिका नवागंतुक छात्रों के लिये उपलब्ध है।

प्रथम संस्करण : जुलाई, 2006

मुद्रक
तारा प्रिंटिंग वर्क्स
रथयात्रा-गुरुबाग रोड, वाराणसी

संदेश

मुझे प्रसन्नता है कि विश्वविद्यालय के प्रकाशन कक्ष के प्रयास से नव प्रविष्ट छात्रों के लिए हमारे महान संस्थापक महामना पं॰ मदन मोहन मालवीय की संक्षिप्त जीवनी प्रकाशित की जा रही है। छात्रों के लिए यह पठनीय पुस्तिका सरल और सुबोध शैली में महामना के जीवन के व्यापक फलक को इंगित भर करती है, तथापि उनके विराट् साधक जीवन तथा गरिमापूर्ण एवं प्रौढ़ विचारशील व्यक्तित्व का भी दर्शन कराती है। उत्सुक छात्रों के लिए महामना के जीवन, कृतित्व एवं व्यक्तित्व के बारे में और जानने के लिए यह पुस्तिका अगर जिज्ञासा उत्पन्न करने में सफल हो तभी यह प्रयास सार्थक होगा। मुझे विश्वास है कि हमारे नवागंतुक छात्र पुस्तिका में दी गयी सूचनाओं से अनुप्राणित होकर महामना मालवीय जी के जीवन से प्रेरणा प्राप्त करेंगे, उनके विचारों को आत्मसात् करेंगे तथा उनके दिखाए सन्मार्ग पर चलकर स्वयं अपना तथा समाज का मार्गदर्शन करेंगे, उन्हें सार्थक बनाएँगे। महामना ऐसी ही सर्वांगीण शिक्षा के पक्षधर थे जो सम्पूर्ण मानव बनाए।

अल्पकाल में पुस्तिका को तैयार करने में प्रकाशन कक्ष के विशेष कार्याधिकारी, (सूचना एवं जनसम्पर्क अधिकारी) डॉक्टर विश्वनाथ पाण्डेय तथा उनके मार्गदर्शन के लिए प्रोफेसर वी.एस. जायसवाल (अध्यक्ष, प्रकाशन समिति), प्रोफेसर वी.के. कुमरा (छात्र अधिष्ठाता), प्रोफेसर सुशीला सिंह (प्राचार्या, महिला महाविद्यालय), प्रोफेसर अंजू शरण उपाध्याय (अध्यक्ष, राजनीतिशास्त्र), प्रोफेसर अवधेश प्रधान (हिन्दी विभाग) के सम्मिलित प्रयासों की मैं सराहना करता हूँ। मुझे विश्वास है कि अगले सत्रों में पुस्तिका की सामग्री और कलेवर में निरन्तर प्रगति होगी।

नवागंतुक छात्रों और छात्राओं को उनकी भावी जीवन की सफलता की मेरी कामना है।

प्रोफेसर पंजाब सिंह
कुलपति

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
6 जुलाई, 2006

भूमिका

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के "कौस्तुभ जयन्ती" (प्लेटिनम जुबलि समारोह) के अवसर पर हमारे विश्वविद्यालय के संस्थापक प्रातः स्मरणीय महामना मालवीय पर विद्यार्थियों के लिए उनके जीवन की संक्षिप्त झलक पर प्रकाशन का निर्णय किया गया, जिससे विश्वविद्यालय के स्नातक तथा अन्य जिज्ञासु महामना के बारे में रेखांकित जीवन-विवरण प्राप्त कर सके। कुलपति प्रो॰ रघुनाथप्रसाद जी रस्तोगी की अध्यक्षता में बम्बई के प्राचीन स्नातक संघ की बैठक में पदाधिकारियों ने भी ऐसे एक प्रकाशन की आवश्यकता पर बल दिया तथा आश्वासन दिया कि इसके मुद्रण की वे व्यवस्था करेंगे।

पश्चात्, कुलपति प्रोफेसर पंजाबसिंह के निर्देश पर यह प्रयास पुनः किया जा रहा है। तथापि महामना के सर्वतोमुखी जीवनवृत्त को कतिपय पृष्ठों में समाहित करना लगभग असंभव सा कार्य है। फिर भी अत्यन्त संकोच के साथ उनके विशाल जीवन पटल से एक रेखांकन भर प्रस्तुत करने का प्रथम प्रयास करने का साहस किया गया है। आगे के संस्करणों में परिवर्धन की पर्याप्त गुँजाइश है। उनके युगांतरकारी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और राजनीतिक विचारों को स्थानाभाव के कारण छोड़ दिया गया है। इस पर एक अलग से पुस्तिका का प्रकाशन समीचीन है।

इस पुस्तिका में सामग्रियों का संकलन मुख्यतः जिन पुस्तकों से किया गया है, उनकी सूची दी गयी है जिनसे जिज्ञासु अपनी विस्तृत जिज्ञासा की शांति के लिये उनका अध्ययन कर सकें। उन पुस्तकों में महामना के विचारों, कर्तृत्व तथा जीवन-वृत्त पर प्रकाशित पुस्तकों की विवरणिका भी मिल जायेगी, जिनसे और भी विस्तार में जाया जा सकता है। ये पुस्तकें विश्वविद्यालय के प्रकाशन कक्ष में बिक्री के लिए उपलब्ध हैं तथा विभिन्न पुस्तकालयों में भी पढ़ी जा सकती हैं।

पुस्तिका के संपादित अंशों के संकलन तथा उसकी क्रमबद्ध प्रस्तुति के प्रयास में गलतियाँ तथा विसंगतियाँ संभव हैं तथा सुधी पाठकों द्वारा इसकी जानकारी मिलने पर हम कृतज्ञ होंगे एवं परिवर्धित संस्करणों के प्रकाशन में उसे दूर करने को हम सचेत होंगे। फिर भी किन्हीं भी भूलों के लिये मैं व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी हूँ।

पुस्तिका के अन्त में महामना मालवीयजी का संक्षिप्त जीवनवृत्त तिथिवार प्रस्तुत किया गया है, जिससे पुस्तिका में छूट गयी जानकारियों का निवारण हो सके।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
काशी
दिनांक 1 जुलाई, 2006

विश्वनाथ पाण्डेय

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय भारत के स्वातन्त्र्य संघर्ष के युग के प्रदीप्त नक्षत्र हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के हलचल भरे ऐतिहासिक क्षितिज पर उनका समुदय भारतीय मेधा के चरम उत्कर्ष का निदर्शन है। महामना मालवीयजी भारतीय चिन्तन की उदारता, भारतीय जीवन पद्धति की सहिष्णुता, भारतीय राजनीतिक, आर्थिक, बौद्धिक एवं सांस्कृतिक संघर्ष की समुज्ज्वलता का मूर्तिमान प्रतीक हैं।

उनकी अमरकृति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पौरस्त्य एवं पाश्चात्य, प्राचीन एवं आधुनिक समस्त विद्याओं की राजधानी ही नहीं, अपितु भारत की राष्ट्रीय चेतना एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण का भी प्रतीक रही है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय भारतीय स्वाधीनता संग्राम के युग में प्रेरणा एवं शक्ति के अजस्र स्रोत के रूप में भी अपनी भूमिका निभा चुका है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की उस गौरवपूर्ण परम्परा और उसके प्रतिष्ठाता महामना मालवीय के पवित्र व्यक्तित्व का स्मरण हमारे लिए प्रेरणा के नवीन द्वार खोलता है।

आधुनिक भारत के निर्माता

पं॰ मदनमोहन मालवीय, जिन्हें लोग सामान्यतः केवल "महामना मालवीय" के नाम से जानते हैं, मूर्धन्य राष्ट्रीय नेताओं में अग्रणी थे। जितनी श्रद्धा और जितना आदर उनके लिये शिक्षित वर्ग में था, उतना ही साधारण वर्ग में भी था। देश की जनता में जितने लोकप्रिय मालवीयजी थे, उतना गाँधीजी और लोकमान्य तिलक के सिवा शायद ही कोई अन्य नेता रहा हो। मालवीय जी की विद्वत्ता असाधारण थी और वे अत्यन्त सुसंस्कृत व्यक्ति थे। विनम्रता एवम् शालीनता उनमें कूट-कूटकर भरी थी। वे अपने युग के सर्वश्रेष्ठ वक्ता थे। वे संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी तीनों ही भाषाओं में निष्णात थे।

मालवीयजी का शरीर भव्य एवं सुन्दर तथा उनका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावोत्पादक था। वे वेश-भूषा में ही नहीं, अपितु खान-पान, रहन-सहन तथा व्यवहार में भी सादगी की मूर्ति थे। ऋषिकल्प महामनाजी एक दृढ़ आस्तिक तथा धर्मपरायण महापुरुष थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, जो

उनकी सर्वोत्तम कृति है, में उन्होंने शिक्षा की आधुनिक पद्धति तथा साधनों का पूरा उपयोग किया। उन्हीं के शब्दों में "वस्तुतः यह अखिल भारतीय विश्वविद्यालय है।" उनका जीवन ही युवकों के लिये एक महान प्रेरणा स्रोत था।

उनके स्तर के किसी अन्य नेता के पास जनसाधारण की पहुँच उतनी सरल नहीं थी, जितनी मालवीयजी के पास। लोग उनके साथ इतने प्रेम से बात कर सकते थे मानों वे उनके पिता, बन्धु अथवा मित्र हों। निर्धनों एवम् पीड़ितों की सेवा-सहायता करना उनके जीवन का आदर्श ही नहीं था, अपितु उनके जीवन की वास्तविकता थी। लोक-सेवा-कार्य उनके लिये लोकप्रियता अथवा प्रतिष्ठा प्राप्त करने का साधन नहीं था। गॉधी युग से पहले राजनैतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में मालवीयजी का अद्वितीय स्थान था और गॉधी युग में भी पहले की ही भाँति वे जनता के विश्वास-भाजन बने रहे। इतनी शक्ति और प्रतिष्ठा प्राप्त होते हुए भी वे असाधारण रूप से विनम्र थे। अहंकार अथवा गर्व उनमें लेशमात्र भी नहीं था।

महात्मा गाँधी उन्हें बराबर अपना बड़ा भाई मानते रहे। वे मालवीयजी को "आधुनिक भारत का निर्माता" कहा करते थे। पं॰ नेहरू ने कहा है– "मालवीय जी एक महामानव थे। वे उन लोगों में थे, जिन्होंने आधुनिक भारतीय राष्ट्रीयता की नींव रखी।" एक अन्य अवसर पर पं॰ जवाहरलाल नेहरू ने कहा है–"कांग्रेस जब से शुरू हुई, वे (महामना-मालवीय) हमारे राजनीतिक आन्दोलन की एक खास निशानी रहे हैं। उसे शुरू करने में, बनाने और बढ़ाने में मालवीयजी का बहुत बड़ा हिस्सा रहा है। इसमें कोई शक नहीं कि समय की हवा देखकर भारतीय राजनीति में मालवीयजी अगुआ भी रहे और एक कड़ी भी रहे। जोड़ते उन लोगों को, जो कांग्रेस में आगे-पीछे गिने जाते थे, यानी नरम और गरम दल वालों को। उनका स्वभाव ही बहुत विरोध करने का नहीं था। यह तो एक बहुत उँचे दर्जे की बात है कि वह अपनी राय पक्की रखते हुए भी मिलकर रहते थे और दूसरों को मिलाने की कोशिश करते थे।

.... उस समय के उन बड़े नेताओं में प्राचीन संस्कृति की ओर सबसे अधिक ध्यान मालवीय जी का रहा। यह एक अच्छी बात थी। यों भी अच्छी होती, लेकिन उस समय की स्थिति विशेष में तो वह बहुत ही अच्छी थी, क्योंकि देश कुछ भटक रहा था। भटक गया था। ..... उस समय बहुत सारे लोग थे, बड़े विद्वान् लोग थे, संस्कृति के बड़े पण्डित लोग भी थे, पर जहाँ तक मेरा विचार है, राजनैतिक नेताओं में, बड़े नेताओं में मालवीयजी ही शायद इस मामले में सबसे आगे थे। वे रोकते थे अंग्रेजियत की बाढ़ को, पर विरोध करके नहीं, बल्कि अपने काम से, अपने विचारों से और कोशिश करते थे अपनी संस्कृति को बढ़ाने की। ..... इस सिलसिले में उनका सबसे बड़ा काम हुआ हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना। यह बड़ी भारी बात थी। विश्वविद्यालय के सामने उद्देश्य था, लक्ष्य था, आजकल के जमाने के विज्ञान और विज्ञान की औलाद यानी टेक्नालाजी, इण्डस्ट्री वगैरह को पुरानी भारतीय संस्कृति के साथ जोड़ना। एक माने में यह सबसे बड़ा काम था भारत के लिये। अब भी है, क्योंकि यह एक दो रोज का तो काम नहीं है।"

प्रारम्भिक जीवन

1857 के गदर के साढ़े चार वर्ष बाद 25 दिसंबर सन् 1861 को अर्थात् पौष कृष्ण 8 सं. 1918 वि. को बुधवार के दिन प्रयाग में अहियापुर (लालडिग्गी) मुहल्ले में, मदनमोहन ने जन्म लिया। उनके पितामह पण्डित प्रेमधरजी संस्कृत के बड़े विद्वान् थे। पितामह की तरह पितामही भी धर्मनिष्ठ और शीलसंपन्न थीं। मदनमोहनजी के पिता पं. ब्रजनाथजी एवं माता श्रीमती मूना देवी के छः पुत्र और दो कन्यायें हुईं। इन सबमें मदनमोहनजी ही विशेष रूपसे प्रतिभाशाली सिद्ध हुए।

बालक मदनमोहन पर परिवार की आर्थिक दशा का, माता के शील तथा स्नेह का, पिता और पितामह की भगवद्भक्ति तथा धर्म के प्रति अनुराग का गहरा प्रभाव पड़ा। उनका जीवन धर्मनिष्ठ, शीलसंपन्न, भगवद्भक्त, दीनबन्धु तथा समाजसेवी के रूप में विकसित हुआ। उन्होंने अपनी पचहत्तरवीं वर्षगाँठ के अवसर पर कहा था कि, "मेरे पितामह, पितामही, पिता और माता बड़े

धर्मात्मा, सदाचारी और निःस्वार्थी ब्राह्मण थे। उन्हीं के प्रभाव से मैं इतना काम कर सका।"

जब मदनमोहनजी पाँच वर्ष के थे, तब उनको विद्यारम्भ कराया गया। पहाड़ा पढ़ने वे एक पण्डितजी के पास महाजनी पाठशाला में भेज दिये गये। उसके बाद उनकी प्रारंभिक शिक्षा हरदेवजी महाराज की धर्मज्ञानोपदेश पाठशाला में हुई। उन्होंने वहाँ संस्कृत भाषा तथा प्राचीनशास्त्र पढ़े। हरदेवजी महाराज के मार्गदर्शन में किशोर मालवीय का मन सनातन धर्म एवं भारतीय संस्कृति के संस्कारों से भावित हुआ। सन् 1868 में प्रयाग में गवर्नमेंट हाईस्कूल खुला और माताजी की आज्ञा से उन्होंने वहाँ पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। एन्ट्रेन्स पास करने के बाद परिवार की आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद मदनमोहन म्योर सेंट्रल कालेज में पढ़ने लगे। सोलह वर्ष की अवस्था में उनका विवाह मिर्जापुर की सुश्री कुंदन देवी के साथ संपन्न हुआ। मालवीय जी अपनी पत्नी के स्वभाव और व्यवहार से हमेशा संतुष्ट रहे। उन्हें इसका गर्व था।

■ अध्यापन एवं विविध सामाजिक कार्य ■

म्योर सेन्ट्रल कालेज से सन् 1884 में बी.ए. परीक्षा पास करने के बाद उन्होंने गवर्नमेंट हाईस्कूल में, जहाँ उन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी, 40 रू. मासिक पर अध्यापन आरम्भ किया। यद्यपि वे आगे पढ़ना चाहते थे परन्तु परिवार की विपन्नता के कारण ऐसा सम्भव न हो सका। वे एक सफल अध्यापक सिद्ध हुए।

मालवीयजी ने अपने गुरु प्रोफेसर आदित्यराम भट्टाचार्य के प्रोत्साहन से सन् 1880 में ही सार्वजनिक कार्यों में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था तथा "प्रयाग हिन्दू समाज" नामक संस्था के संचालन में बहुत योगदान किया। पण्डित बालकृष्ण भट्ट के संपादकत्व में प्रकाशित होने वाले पत्र "हिंदी प्रदीप" में मालवीयजी ने धार्मिक और सामयिक विषयों पर लेख लिखना प्रारम्भ किया। 1882 में स्वयं स्वदेशी का व्रत लेकर उसका प्रचार भी करने लगे। 1884 में प्रयाग में हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि सभा स्थापित हुई, मालवीयजी उसके एक प्रमुख कार्यकता बन गये। 1885 में प्रो. भट्टाचार्य ने "इण्डियन यूनियन" के नाम से अंग्रेजी में एक साप्ताहिक निकालना प्रारम्भ किया, जिसके संपादन का अधिकतर उत्तरदायित्व मालवीयजी पर ही था।

❑ प्रारम्भिक सार्वजनिक जीवन ❑

सन् 1886 में दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में मालवीयजी पं. आदित्यराम भट्टाचार्य के साथ इण्डियन नेशनल कांग्रेस के द्वितीय सम्मेलन में शामिल होने के लिए कलकत्ता गये और उन्होंने श्रीसुरेन्द्रनाथ बैनर्जी द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव का समर्थन करते हुए प्रतिनिधि संस्थाओं की स्थापना पर बहुत ही उत्तम भाषण दिया, जो वाग्मिता का अन्यतम उदाहरण था। अधिवेशन के अध्यक्ष दादाभाई नौरोजी ने इसे सुनकर कहा कि इस नवयुवक की वाणी में स्वयं भारतमाता ही मुखर हो रही हैं। श्रीसुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने स्वीकार किया कि यह भाषण मेरे सुने भाषणों में सबसे अच्छा था, जिसका कांग्रेस के प्रतिनिधियों के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस भाषण ने उन्हें कांग्रेस के भावी नेता के रूप में निर्दिष्ट कर दिया। ह्यूम साहब ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि मालवीय जी का यह भाषण श्रोताओं ने तन्मय होकर सुना। 1887 में हरिद्वार में सनातन धर्मावलम्बियों की एक बड़ी सभा में "भारत धर्म महामण्डल" की नींव पड़ी, शीघ्र ही वे "भारतधर्म-महामण्डल" के महोपदेशकों में गिने जाने लगे। लगभग पन्द्रह वर्ष इस संस्था से उनका गहरा सम्बन्ध बना रहा, और इसके तत्वावधान में आयोजित सम्मेलनों और सभाओं में सनातन धर्म और हिन्दू संस्कृति आदि विषयों पर वे व्याख्यान देते रहे।

कलकत्ता-कांग्रेस के मालवीयजी के भाषण से राजा रामपालसिंह अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने कालाकांकर (प्रतापगढ़) से स्वयं द्वारा प्रकाशित हिंदी समाचार-पत्र "हिन्दोस्थान" के संपादन हेतु अनुरोध किया। मालवीयजी ने जुलाई सन् 1887 में अध्यापन का कार्य छोड़कर "हिन्दोस्थान" के संपादक का उत्तरदायित्व ग्रहण किया। उनके संपादकत्व में "हिन्दोस्थान" ने पर्याप्त लोकप्रियता अर्जित की। तत्कालीन समस्याओं पर उनके संपादकीय लेख और टिप्पणियाँ संतुलित और प्रेरणास्पद होती थीं। संपादकीय शालीनता का पालन, सत्पथ का समर्थन, राष्ट्रहित की पुष्टि, व्यक्तिगत कटाक्ष से निर्मुक्त समालोचना उनकी पत्रकारिता के गुण थे। सरकार भी उनके पत्र की लोकोपयोगिता स्वीकार करती थी। राजा साहब मालवीयजी के कार्य से पूरी तौर पर संतुष्ट थे, और उनका बड़ा आदर करते थे।

मालवीयजी कालाकांकर में रहकर सम्पादन का कार्य करते समय प्रति सप्ताह प्रयाग आ जाते थे, और देश की राजनीतिक प्रगति में यथासंभव सक्रिय योगदान करते थे। दिसम्बर सन् 1887 ई॰ में उन्होंने अपने प्रान्त से चालीस से अधिक प्रतिनिधि जुटाकर कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में भाग लिया। इस अवसर पर वे कांग्रेस द्वारा अपने प्रान्त के "पोलिटकल एसोसिएशन" तथा स्थायी कार्यसमिति के मन्त्री नियुक्त किये गये, और उनके निमंत्रण पर अगले वर्ष प्रयाग में कांग्रेस का अधिवेशन करने का निर्णय किया गया।

सन् 1889 में कालाकांकर से प्रयाग लौट आने पर मालवीयजी पण्डित अयोध्यानाथ के नेतृत्व में अंग्रेजी दैनिक "इण्डियन ओपिनियन" में सह-संपादक का काम करने लगे और साथ ही उन्होंने वकालत की पढ़ाई भी शुरू कर दी।

वकालत

सन् 1891 में वकालत की परीक्षा पास करके मालवीय जी ने पंडित बेनीराम कान्यकुब्ज के साथ जिला अदालत में काम शुरू किया। दो वर्ष बाद हाईकोर्ट में वकालत करने लगे। धीरे धीरे वकालत के काम में उनकी व्यावसायिक प्रगति होती गयी। हाईकोर्ट में वकालत निश्चय ही कीर्ति और धनप्राप्ति दोनों का ही अच्छा साधन था। यदि वे लग कर उसे ही करते रहते तो अवश्य ही सुख-समृद्धि का जीवन व्यतीत कर सकते थे। सर तेजबहादुर सप्रू ने लिखा है–"वकालत प्रारम्भ करने के थोड़े वर्षों के भीतर दीवानी के पक्ष में मालवीयजी की अच्छी वकालत चमक उठी थी, जिससे उनका नाम पंडित सुन्दरलाल, पं॰ मोतीलाल नेहरू और श्री चौधरी के पश्चात् लिया जाने लगा था। वकालत में वे अत्यन्त तीव्र मेधावाले वकील के रूप में प्रसिद्ध थे।" पर लक्ष्मी उन्हें आकर्षित नहीं कर सकी। राष्ट्रसेवा ही उनका मुख्य कार्य बना रहा। 1908 में उन्होंने वकालत का व्यवसाय कम करने का और 1910 में छोड़ देने का निश्चय किया और अंततः 1913 में बिल्कुल छोड़ दिया। वकालत छोड़कर सारा जीवन राष्ट्र की उन्नति में लगा देने का निर्णय अवश्य ही मालवीयजी के त्याग का उच्चतम उदाहरण है। श्री गोपालकृष्ण गोखले ने कहा था–त्याग तो मालवीयजी महाराज का है। वह निर्धन परिवार में उत्पन्न हुए

और बढ़ते-बढ़ते प्रसिद्ध वकील होकर सहस्रों रूपया मासिक कमाने लगे। उन्होंने वैभव का स्वाद लिया, और जब देश से मातृभूमि की सेवा की पुकार उठी तो उन्होंने सब कुछ त्यागकर पुनः निर्धनता स्वीकार कर ली।

इस दशक में उनका सबसे महत्वपूर्ण काम अदालतों में देवनागरी लिपि के प्रयोग को सरकार द्वारा स्वीकृत कराना था। नवम्बर 1889 में पंडित बालकृष्ण भट्ट के प्रयास से तथा बहुत से नवयुवकों के उत्साह से मालवीयजी के निवास स्थान के निकट "भारती भवन" के नाम से एक पुस्तकालय स्थापित हुआ। वकालत के जमाने से मालवीयजी ने प्रयाग की भरपूर सेवा की। उसके सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन को समृद्ध किया। वे नगर पालिका के वरिष्ठ उपाध्यक्ष रहे तथा यह संबंध 1916 तक बना रहा। मालवीयजी ने प्रयाग में हिन्दू विद्यार्थियों के रहने के लिए एक छात्रावास के निर्माण के निमित्त, प्रान्त में घूम-घूम कर चन्दा एकत्र किया। 1903 में ढाई लाख रूपये की लागत से छात्रावास तैयार हो गया।

1907 में मालवीयजी ने यू.पी. इण्डस्ट्रियल कांफ्रेन्स (औद्योगिक सम्मेलन) का अधिवेशन प्रयाग में आयोजित किया तथा प्रयाग इण्डस्ट्रियल एसोसिएशन की स्थापना की। सन् 1907 में ही वसन्त पंचमी के दिन मालवीयजी ने अपने राजनीतिक और सांस्कृतिक विचारों के प्रसार के लिये हिन्दी में "अभ्युदय" नाम का साप्ताहिक निकालना प्रारम्भ किया। उन्होंने दो वर्षों तक स्वयं उसका सम्पादन किया। उसके बाद राजर्षि पुरूषोत्तमदास टण्डन ने उसका कार्यभार सम्भाला।

लीडर का प्रकाशन

सन् 1909 में मालवीयजी के प्रयास तथा बहुत से मित्रों के सहयोग से विजयादशमी के दिन 24 अक्टूबर से अंग्रेजी दैनिक "लीडर" का प्रकाशन शुरू हुआ। इस काम में पण्डित मोतीलाल नेहरू का भी बड़ा हाथ था जो प्रबन्ध समिति के अध्यक्ष थे। सन् 1911 में श्री सी.वाई. चिन्तामणि ने संपादक का उत्तरदायित्व मालवीयजी से ग्रहण किया। अक्टूबर सन् 1910 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन में मालवीयजी ने अध्यक्षीय भाषण दिया।

■ कांग्रेस में कार्य ■

मालवीयजी के राजनीतिक कार्यो का प्रमुख मंच कांग्रेस ही था। सी.वाई. चिन्तामणि ने बताया है, "प्रारम्भ में बीस वर्ष तो संयुक्तप्रान्त में मालवीयजी ने ही गंगाप्रसादजी वर्मा के सहयोग से कांग्रेस का झण्डा फहराये रखा। मालवीयजी की अध्यक्षता में 1909 में लाहौर तथा 1918 में दिल्ली में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। 1903-1918 तक प्रांतीय कौंसिल की सदस्यता के जरिये उन्होंने संयुक्तप्रान्त की महत्वपूर्ण सेवा की। 1910 में मालवीयजी जब प्रांतीय कौंसिल में थे, गैर सरकारी सदस्यों द्वारा केन्द्रीय कौंसिल के सदस्य निर्वाचित होकर 1920 तक वहाँ काम करते रहे। देश की रक्षा और अभिवृद्धि के निमित्त मालवीयजी ने सरकार की सैनिक, प्रशासनिक, आर्थिक और वित्तीय नीतियों और गतिविधियों की रचनात्मक समीक्षा की। फिर भारतीय लेजिस्लेटिव असेंबली के 1924-30 के निर्वाचित सदस्य की हैसियत से देश के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये।

कांग्रेस के जन्मकाल से मालवीयजी उसके सक्रिय अग्रणी नेता रहे। दिसंबर सन् 1908 में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में मालवीयजी ने कांग्रेस के उस प्रस्ताव का समर्थन किया जिसमें प्रस्तावित राजनीतिक सुधारों का स्वागत किया गया था और स्वीकार किया गया था कि विधान कौंसिलों का विस्तार तथा उनके अधिकारों और कार्यों का परिवर्धन, कार्य परिषदों में भारतीय सदस्यों की नियुक्तियाँ तथा स्वायत्त शासन का अधिक परिवर्धन सुधारों की उदार किस्त है। सांप्रदायिक आधार पर चुनावों के प्रस्ताव का विरोध करते हुए उन्होंने कहा, "धर्म के आधार पर प्रतिनिधियों का चुनाव अनावश्यक और असंभव है।"

मालवीयजी ने तत्कालीन राजनीतिक सुधारों के क्षेत्र में अत्यन्त महत्व पूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। राष्ट्रीयता का एक सही परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत किया। विभिन्न कमेटियों में गवाही तथा हिस्सेदारी के जरिये सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक समस्याओं के समाधान तथा तत्कालीन देशज स्थिति में बदलाव के क्षेत्र में उन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य किये। साथ ही 1916-18 में इण्डस्ट्रियल कमीशन के सदस्य की हैसियत से उसके काम में मालवीयजी का योगदान तत्कालीन स्थिति में ऐतिहासिक महत्त्व का हैं, जिससें औद्योगिक ह्रास पर उन्होंने गहरी चिन्ता व्यक्त की थी।

शुरू से लेकर सन् 1937-38 तक कांग्रेस के प्रायः सभी वार्षिक एवम् विशेष अधिवेशनों में भाग लेकर मालवीयजी ने राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं के सन्दर्भ में अपने गहनविचारशील तथा संघर्षरत व्यक्तित्व का परिचय दिया। वे देश की राजनीतिक, बौद्धिक एवं सांस्कृतिक दासता से मुक्ति के लिये सदा संघर्षशील रहे। रौलट एक्ट तथा, जालियांवाला हत्याकाण्ड का प्रत्यक्ष विरोध, कांग्रेस स्वराज्यपार्टी एवम् नेशनलिस्ट पार्टी तथा स्वदेशी संघों का गठन, एकता कान्फ्रेन्स उसी संघर्ष की अन्तहीन गाथायें हैं।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के दूसरे वर्ष में प्रवेश करके मालवीयजी ने पचास वर्ष तक लगातार इसमें सक्रिय कार्य करने का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। उनके समान इतनी लम्बी अवधि तक कांग्रेस में कार्य करने वाले बिरले ही नेता होंगे। कांग्रेस में भाग लेते ही वे प्रसिद्ध हो गये। सत्य तो यह है कि उन्हें राष्ट्रीय नेतृत्व में उच्चतम स्थान सहज ही मिल गया। इसके लिए न तो उन्होंने कोई प्रयास किया और न किसी पद को प्राप्त करने की उनकी लालसा थी। 1909, 1918, 1930 तथा 1932 आदि में उन्हें कांग्रेस की अध्यक्षता करने का अवसर देकर इस राष्ट्रीय संस्था ने उनके नेतृत्व को स्वीकारा।

यह ध्यान देने योग्य है कि लम्बे राजनीतिक जीवन में मालवीयजी का प्रभाव कभी मन्द नहीं पड़ा। उनके समय के अनेक राष्ट्रनेता कुछ दशकों बाद फीके पड़ गये, राष्ट्रीय राजनीति में पिछड़ गये अथवा इससे सामंजस्य न बिठा सके, परन्तु मालवीयजी का नेतृत्व लगातार ओजस्वी बना रहा। महान राष्ट्रसेवी को पुनः कांग्रेस की अध्यक्षता ऐसे दौर में सौंपी गयी, जब सरकार का दमनचक्र चल रहा था। सत्तर वर्ष से भी अधिक वय के मालवीयजी ने बड़ी प्रसन्नता से कांग्रेस की अध्यक्षता की, जेल की यात्रा की और अनेक कष्ट सहे। कांग्रेस ने उन्हें जो जिम्मेदारी सौंपी, उन्होंने पूर्ण निष्ठा से उसका निर्वाह किया।

मुख्यरूप से उनकी राजनीतिक विचारधारा नरमपंथी थी। आरंभिक तीन दशकों में उन्होंने जो राजनीतिक दृष्टिकोण अपनाया, उसी पर उनकी आस्था बनी रही। इसी कारण उन्होंने बड़े उत्साह से प्रांतीय तथा केन्द्रीय असेम्बलियों

की बैठकों में भाग लिया, लम्बे भाषण दिये और तत्कालीन ब्रिटिश सरकार को प्रभावित करने का प्रयास किया। जब राजनीतिक संघर्ष का स्वरूप गांधीयुग में बदला, तब उन्होंने इसके अनुसार कार्य करने में देर नहीं की। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान वह पूरी तरह से आन्दोलनात्मक संघर्ष से प्रतिबद्ध रहे। दांडी यात्रा के समाप्त होने तक उन्होंने भारतीय लेजिस्लेटिव असेम्बली से विदा ले ली और आन्दोलन के आरम्भ होते ही वह इसे सफल बनाने में जुट गये। आन्दोलन के पहले दौर में उन्होंने भी जेल यात्रा की। गांधी-इरविन समझौते के बाद दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के उद्देश्य से उनकी लन्दन यात्रा से यह एक बार फिर दिखायी दिया। सर तेज बहादुर सप्रू ने अपने एक संस्मरण में लिखा है, "इस कांफ्रेंस में कोई भी ऐसा हिन्दुस्तानी नहीं था, जिसे कि मालवीयजी से अधिक मात्रा में ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का सम्मान प्राप्त था। जब आंदोलन का दूसरा दौर आया, तब उन्होंने जनसंघर्ष को दिशा देने में सक्रिय भूमिका निभायी।

राष्ट्रसेवा में जिस तेजस्विता के साथ उन्होंने अग्रणी भूमिका निभायी, वह कांग्रेस के उज्ज्वल इतिहास का एक गौरवमय अध्याय है। देश को स्वाधीन कराना उनका सर्वोपरि लक्ष्य था। दृढ़ निश्चय और संकल्प के साथ वह जीवन के अंतिम सांस तक इसी ओर प्रयत्नशील रहे।

1937 में मालवीयजी ने सक्रिय राजनैतिक जीवन से संन्यास ले लिया। यह अवसर था प्रांतीय चुनावों के बाद की अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक, जिसमें कांग्रेस द्वारा मंत्रिमण्डल बनाने पर विचार हुआ। मालवीयजी का विचार था कि चुनावों में की गयी प्रतिज्ञा को तथा नयी व्यवस्था की कमियों को ध्यान में रखकर उन्हें (कांग्रेस को) मंत्रिमण्डल बनाकर शासन का उत्तरदायित्व नहीं लेना चाहिए। पं॰ जवाहारलाल नेहरू, आचार्य नरेन्द्रदेव आदि अनेक कांग्रेस के नेताओं का भी यही विचार था, परन्तु बहुमत पदग्रहण करने का इच्छुक था। तब मालवीयजी ने एक नये विवाद का उत्तरदायित्व ग्रहण करने के बजाय आयु के छियत्तरवे वर्ष में अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी की बैठक में नवयुवक कांग्रेसी कार्य- कर्ताओं को आशीर्वाद देते हुए सक्रिय राजनीति से छुट्टी ले ली।

❑ उदार हिन्दू धर्म और सरल हिन्दी ❑

मालवीयजी मुस्लिम लीग की गतिविधि, दावों और माँगों से क्षुब्ध थे। उन्हें सरकार की मन्द-नीति पर भी खेद था। पर वे कांग्रेस से अलग मुस्लिम लीग जैसी प्रतिद्वन्दी हिन्दू राजनीतिक पार्टी बनाने के पक्ष में नहीं थे। वे चाहते थे कि हिन्दू जनता में सनातन धर्म के सजीव तत्त्वों और मूल सिद्धान्तों का प्रसार किया जाय, उसे अपने कर्तव्यों का ज्ञान कराया जाय और इस तरह समाज में जीवन और शक्ति संचारित की जाय। इस हेतु उन्होंने 'सनातन धर्म सभा' स्थापित की और उसके द्वारा धर्म के मूल सिद्धान्तों के प्रचार का एक मंच प्रदान किया। उन्होंने स्वयं लेखों, भाषणों और कथाओं द्वारा अपने धार्मिक विचारों से हिन्दू जनता को प्रेरणा दी।

10 अक्टूबर 1910 को काशी में आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन में मालवीयजी ने अध्यक्षता की तथा हिन्दी भाषा-भाषी जनता से हिन्दी सीखने का अनुरोध किया। उन्होंने कहा कि देश की सब भाषाओं की उन्नति हो, उर्दू के प्रेमी उर्दू की उन्नति का प्रयत्न करें और हिन्दी के जानने वाले हिन्दी की उन्नति का। उन्होंने कहा, अच्छा तो यही होगा- "हिन्दी और उर्दू दोनों को यथासंभव एक स्थान में लाया जाय", और "दोनों ओर से प्रयत्न होने से भाषा के क्रम को बहुत कुछ एक कर सकते हैं"।

❑ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ❑

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मालवीयजी के शिक्षा दर्शन का मूर्तिमान् स्वरूप है।उन्होंने इस विश्वविद्यालय की स्थापना जिस लगन से की, उससे यह प्रमाणित हो जाता है कि अपने संकल्प को पूरा करने की उनमें असाधारण क्षमता थी। आरम्भ से ही उन्होंने एक विशाल और समुन्नत विश्वविद्यालय का स्वप्न देखा। यह विश्वविद्यालय उनकी मत्त्वाकांक्षा का प्रतीक है। यह ध्यान देने योग्य है कि शिक्षा के प्रति उनके विचारों में परम्परा और आधुनिकता का अनूठा सम्मिश्रण दिखायी देता है। उन्होंने प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान को समान महत्व दिया। उनकी शिक्षा व्यवस्था हर दृष्टि से प्रगतिशील और आधुनिक थी। यही कारण है कि स्वाधीनता मिलने के समय देश को जितने इंजीनियर एवम् तकनीकी ज्ञान रखने वाले व्यक्ति

इस विश्वविद्यालय ने दिये, उतने किसी अन्य संस्था से उपलब्ध नहीं हुए। विज्ञान के अध्ययन हेतु उच्च स्तर की शिक्षा यहाँ आरम्भ से ही उपलब्ध थी।

राष्ट्रीय चेतना के क्षेत्र में इस विश्वविद्यालय ने सदैव अग्रणी भूमिका निभायी। राष्ट्रीय आन्दोलन में यहाँ के विद्यार्थी और शिक्षक सभी शिक्षण संस्थाओं से आगे थे। यथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन के समय केन्द्र सरकार ने उसे आर्थिक सहायता देना रोक दिया। उस समय अनेक बार यहाँ के अधिकारियों पर दबाव डाला गया कि राष्ट्रीयता की लहर को नियंत्रित करें, परन्तु मालवीयजी कभी इस माँग के सम्मुख झुके नहीं। नवंबर, 1930 में उनके परामर्श से विश्वविद्यालय की ओर से जो पत्र सरकार को लिखा गया, उसमें साफ तौर से कह दिया गया कि, "देशभक्ति एक शक्तिशाली उत्कर्ष है। इसके विकास में विश्वविद्यालय का सहयोग आवश्यक है ..... राष्ट्रीय आन्दोलन के समय अध्यापकों और विद्यार्थियों से राष्ट्रीय लहर से प्रभावित न होने की आशा नहीं की जा सकती। सरकार की गोपनीय फाइलों में विश्वविद्यालय में चल रही राजनीतिक गतिविधियों की विस्तृत रिपोर्ट उपलब्ध है। इससे यह पता चलता है कि राष्ट्रीय संघर्ष करने वालों को यह विश्वविद्यालय लगातार शरण और सुविधायें प्रदान करता रहा। 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में इस विश्वविद्यालय ने सक्रिय और प्रभावकारी भूमिका निभायी क्योंकि राष्ट्रीय जागरण की जमीन यहाँ एक दशक पहले ही तैयार होने लगी थी। मालवीय जी ने इसे प्रत्यक्ष एवम् परोक्ष रूप से प्रेरित और प्रभावित किया। उन्होंने इस संस्था को राष्ट्रीय जागरण का एक प्रमुख केन्द्र बनाया।

मालवीयजी ने शिक्षा के प्रसार और इसे नया स्वरूप प्रदान करने पर इतना बल इस कारण दिया, क्योंकि वह इसे सांस्कृतिक जागरण का प्रधान अंश मानते थे। उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशकों में भारत में जो सांस्कृतिक पुनर्जागरण हो रहा था, मालवीयजी उससे प्रभावित हुये। उनकी वाणी में, विचारों में, और मान्यताओं में उस सांस्कृतिक उत्थान की झलक मिलती है, जिससे उनके युग के अनेक राष्ट्रवादी अनुप्राणित हुए थे। वह भारत में चल रहे पुनरुत्थान का काल था, जिसमें यहाँ के राष्ट्रनेताओं ने भारतीयों में आत्मविश्वास और स्वाभिमान जगाने का कार्य किया। मालवीयजी के कार्यों

ने भी आत्मविश्वास और स्वाभिमान जगाने का कार्य किया। मालवीयजी के कार्यों की मूल परिकल्पना इसी प्रवृत्ति से उपजी। उन्होंने विशेष रूप से भारत की सांस्कृतिक धरोहर की ओर देखा, उसके गौरवमय इतिहास से प्रेरणा ग्रहण की और भारतीयता के प्रति अनुराग जगाने का सदैव कार्य किया। इसी दृष्टि से उन्होंने भारतीय भाषाओं को विकसित करने तथा संस्कृत के अधिकाधिक प्रयोग पर जोर दिया।

मालवीयजी ने शिक्षा को राष्ट्रीय जागृति का प्रमुख साधन बनाया। प्रमुख राष्ट्रनेता के रूप में प्रतिष्ठित होने के पहले ही उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना करने का निश्चय किया। 1905 के बाद के दस वर्षों से भी अधिक समय तक वह इस विश्वविद्यालय की स्थापना करने में संलग्न रहे। इसके स्थापित हो जाने पर उन्होंने विश्वविद्यालय के विकास और प्रगति को अपना प्रमुख कार्य माना। इसी से गांधीजी ने मत प्रकट किया कि "उनका सबसे बड़ा कार्य काशी हिन्दू विश्वविद्यालय है।" वह उच्चस्तरीय शिक्षा की ऐसी व्यवस्था करना चाहते थे, जिसके द्वारा भारतीय नवयुवको में चरित्र का निर्माण हो, उनमें देशप्रेम और देशसेवा की भावना का संचार हो और भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी निष्ठा बढ़े।

बनारस में आयोजित इक्कीसवें कांग्रेस के समय दिसम्बर, 1905 में मालवीयजी ने विश्वविद्यालय स्थापित करने की सार्वजनिक घोषणा की। कुछ समय पहले से ही वह इसकी रूपरेखा पर सोच-विचार कर रहे थे। अधिवेशन के समय तक उन्होंने प्रस्तावित विश्वविद्यालय की योजना तैयार कर ली और इसके प्रारूप को छपा कर सभी के सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत किया। इसका लाभ यह हुआ कि विश्वविद्यालय के स्वरूप पर प्रमुख शिक्षाविदों और राष्ट्रवादियों को मत प्रकट करने का अवसर मिला। इससे प्रमुख व्यक्तियों की राय की जानकारी मालवीयजी को हो गयी। परिणामतः उन्होंने पहले की योजना में कुछ सुधार करके 1911 में संशोधित रूपरेखा प्रकाशित की।

इन दोनों प्रारूपों को उन्होंने स्वयं ही तैयार करके प्रकाशित किया था। इनकी कुछ विशेषताओं की समीक्षा करके देखा जा सकता है कि मालवीयजी

ने किस प्रकार के विश्वविद्यालय का स्वप्न देखा और स्वप्न को साकार करने में उन्होंने कितना परिश्रम किया।

यह ध्यान देने योग्य है कि विश्वविद्यालय की आवश्यकता को सिद्ध करते हुए मालवीयजी ने सबसे पहले देश की बढ़ती हुई गरीबी और अज्ञानता की समस्या पर प्रकाश डाला और भारत की तुलना यूरोपीय देशों से की। उनका कहना था कि देशवासियों की औसत आमदनी में लगातार गिरावट आ रही है। जहाँ ब्रिटेन में निरक्षर लोगों की संख्या 5 प्रतिशत तथा जर्मनी में एक प्रतिशत थी वहीं भारत में 94 प्रतिशत लोग निरक्षर थे। इस स्थिति को सुधारने के क्रम में उन्होंने विश्वविद्यालय की स्थापना को आवश्यक बताया। मालवीयजी ने आरम्भ से ही प्रतिपादित किया कि नैतिकता, धर्म तथा प्राचीन संस्कृति का समुचित अध्ययन करना प्रस्तावित विश्वविद्यालय का प्रधान लक्ष्य होगा। उन्होंने देश की अवनति और पिछड़ेपन को दूर करने का एकमात्र उपाय यह बताया कि यहाँ विज्ञान की समुचित प्रगति हो। यूरोप और अमेरिका की समृद्धि की समीक्षा करते हुए उन्होंने कहा कि इन देशों में विज्ञान की सहायता से भाप और बिजली की शक्ति विकसित हुई थी और वैज्ञानिकों ने तकनीक को बढ़ाने में योगदान किया था। 1905 के दस्तावेज का यह अंश द्रष्टव्य है: "देश के लोग जिस गरीबी में फंसे हुए हैं उससे उन्हें छुटकारा तभी मिल सकता है जब विज्ञान का उपयोग उनके हित में किया जाय। इस प्रकार के उपयोगी सैद्धान्तिक और व्यावहारिक विज्ञान का अधिकारिक प्रयोग तभी हो सकेगा, जब इसे भारतीय अपने देश में ही प्राप्त करें।" स्पष्ट है कि आरम्भिक रूपरेखा बनाते समय मालवीयजी ने विज्ञान की जानकारी को भारतीय नवयुवकों को सुलभ कराना अपना मुख्य लक्ष्य बनाया। वे विज्ञान को समृद्धि की कुंजी मानते थे।

मालवीयजी के सम्मुख विश्वविद्यालय के मूलस्वरूप के बारे में दो विकल्प थे। एक था ऐसा विश्वविद्यालय स्थापित करना, जिसे सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हो और जो सरकार द्वारा स्वीकृत प्रावधान के अधीन कार्य करे। दूसरा विकल्प था सरकार के अंकुश से पूर्णतः मुक्त विश्वविद्यालय का प्रारम्भ। उन्होंने आरम्भ से ही पहला मार्ग चुना। इसी उद्देश्य से उन्होंने अपने

मूलप्रारूप में कुछ परिवर्तन भी किये। उनमें से एक निर्णय उन्हें यह करना पड़ा कि विश्वविद्यालय में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो। वह पहले यही चाहते थे कि प्रस्तावित विश्वविद्यालय में शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो। परन्तु बाद में समय और काल के अनुरूप उन्होंने अपने विचारों में परिवर्तन किया, क्योंकि अंग्रेज सरकार हिन्दी माध्यम के विश्वविद्यालय को मान्यता देने के पक्ष में नहीं थी। अतः उन्होंने तत्काल अंग्रेजी का माध्यम स्वीकार किया, परन्तु वह चाहते थे कि धीरे-धीरे शिक्षा का माध्यम हिन्दी को ही बनाया जाय।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का प्रारूप इस कारण विशेष महत्व का था, क्योंकि जहाँ इसके पूर्व के स्थापित अन्य पाँच विश्वविद्यालय (बंबई, कलकत्ता, मद्रास, लाहौर और इलाहाबाद) प्रायः परीक्षा लेने के केन्द्र थे, वहीं इसे पूर्ण रूप से आवासीय विश्वविद्यालय के रूप में विकसित करने का निर्णय किया गया। मालवीयजी की कल्पना एक ऐसे विश्वविद्यालय की थी, जहाँ दस हजार छात्र एक साथ रहकर शिक्षा ग्रहण करें और सामूहिक रूप से देश और समाज की प्रगति पर विचार करें।

पहली बार देश में एक ऐसा विश्वविद्यालय स्थापित किया जा रहा था जो निजी प्रयासों पर निर्भर था। पूर्वोक्त पाँचों विश्वविद्यालय सरकार के प्रयास से बने थे। इधर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए मालवीयजी को ही सभी साधन जुटाने थे। सरकार ने इसकी स्वीकृति देने के पूर्व एक बड़ी धनराशि के एकत्र किये जाने की शर्त रखी। इसी के साथ-साथ अन्य शर्तों को पूरा करना भी आवश्यक था। इन कठिनाइयों को देखते हुए उनके सम्मुख उपस्थित चुनौतियों का सहज अनुमान लगाया जा सकता है, परन्तु उन्होंने धैर्य बनाये रखा और विश्वविद्यालय को स्थापित करने की योजना को पूरा करने में पूरी शक्ति लगा दी। यहाँ यह भी स्मरण रखना होगा कि मालवीयजी की महत्वाकांक्षी योजना उनके साहसी व्यक्तित्व के अनुरूप ही थी। वह किसी प्रकार के छोटे, साधारण अथवा सीमाओं में बँधे हुए उच्च शिक्षाकेन्द्र से सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने आरम्भ से ही एक विशाल विश्वविद्यालय का स्वप्न देखा, एक ऐसा विश्वविद्यालय जहाँ प्राच्य विद्याएँ, कला, साहित्य एवं मानविकी विषयों के अध्ययन-केन्द्रों के अतिरिक्त विज्ञान के सभी विषयों के

अध्ययन की व्यवस्था हो। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय देश का प्रथम विश्वविद्यालय बना, जहाँ पर प्रौद्योगिकी की आधुनिक शिक्षा आरम्भ हुई। ज्ञान-विज्ञान और तकनीकी शिक्षा को उच्चतम स्तर तक पढ़ाने का निश्चय उन्होंने आरम्भिक योजना में ही कर लिया था। वह केवल रूपरेखा बनाकर सन्तुष्ट होने वाले व्यक्ति नहीं थे। उन्होंने विश्वविद्यालय की स्थापना होते ही इसके चतुर्मुखी विकास पर ध्यान केन्द्रित किया।

विश्वविद्यालय के बारे में सर्वमान्य प्रारूप तैयार करके मालवीयजी ने देश के प्रभावशाली वर्गों का सहयोग प्राप्त करने का आधार तैयार कर लिया था। वह यह भलीभाँति जानते थे, इसी व्यापक सहयोग और समर्थन के बल पर उनकी इच्छा कारगर हो सकती थी। इसके उपरान्त लगभग पाँच वर्षों तक वह लगातार धन संग्रह के कार्य में जुटे रहे। सरकार तभी मान्यता का विधेयक लाने को तैयार थी, जब पचास लाख रूपये की धनराशि इस कार्य के निमित्त पहले से संगृहीत हो जाये। इस धनराशि को इकट्ठा करने के लिए उन्होंने निजी यात्राएँ कीं, सभी तरह के व्यक्तियों का सहयोग माँगा, चन्दा एकत्र किया और गरीब तथा अमीर हर एक से विश्वविद्यालय के लिए उदारता से धन देने का आग्रह किया। धनसंग्रह के लिए उन्होंने लगन और परिश्रम से कार्य किया। 1915 तक वह विश्वविद्यालय के लिए आवश्यक धनराशि एकत्र करने में सफल हो गये।

मार्च, 1915 में केन्द्रीय विधानपरिषद् के सम्मुख विश्वविद्यालय विधेयक शिक्षा सदस्य द्वारा पेश किया गया। दो बार इस पर बहस हुई। परिषद के सदस्य के रूप में मालवीयजी ने सदस्यों की आशंकाओं के उत्तर दिये। वाद-विवाद का एक प्रमुख केन्द्र बिन्दु था– विश्वविद्यालय में धर्म की शिक्षा और इसका साम्प्रदायिक स्वरूप। उन्होंने स्थिति को साफ करते हुए सदन में ये शब्द कहे, "यह विश्वविद्यालय संकुचित सम्प्रदायवाद को बढ़ावा देने के स्थान पर उदारता तथा मानसिक स्वतंत्रता को विकसित करेगा। यह ऐसी धार्मिक भावना को विकसित करेगा, जो मनुष्य और मनुष्य में भाई-चारे की भावना बढ़ायेगा।" धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता पर बल देते हुए मालवीयजी ने कहा कि इसका लक्ष्य प्राणिमात्र का कल्याण करना होगा। उन्होंने सदन में कहा, "मैं धर्म के सच्चे सिद्धान्तों की शिक्षा पर विश्वास